'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक २७ | वाराणसी, गुरुवार, ५ मार्च, १९५९ | पच्चीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

ढिकोला (भीलवाडा) १५-२-'५९

'सेवक-वर्ग' नहीं, 'सेवक-समूह' बनाना है

मानव जन्म लेता, बढ़ता, घटता और आखिर में मर जाता है। एक-एक व्यक्ति आता और जाता है। इस तरह समाज चलता ही रहता है। किन्तु कभी यह समाज भी कुल-का-कुल खत्म हो सकता है। यह नहीं कि समाज कभी खत्म होगा ही नहीं। जैसे मनुष्य के लिए जन्म-मृत्यु है, वैसे ही समाज के लिए भी। फिर भी फिलहाल मान लेना चाहिए कि समाज बढ़ता रहेगा और मनुष्य भी बदलता रहेगा।

मानव की विशेषता

एक मनुष्य अपना काम कर जाता है तो दूसरा आता है। वह अपना काम कर जाता है तो तीसरा आता है। इस तरह एक के बाद एक मनुष्य आते-जाते हैं और काम चलता रहता है। भूख लगती है तो खाना हासिल किया जाता है। नींद आती है तो सोने का इन्तजाम होता है। बीमारियाँ होती हैं तो उनका उपचार होता है। इसी तरह बारिश, धूप, ठंड आदि कुछ तकलीफें होती हैं तो उनसे बचाव के लिए घर आदि बनाये जाते हैं। ये सारे काम तो चलते ही हैं। किन्तु ये मनुष्य के मुख्य काम नहीं। यह सब तो शरीर के साथ चलेगा ही। वह पशु, पक्षी, प्राणी आदि सबका चलता है। आप देखेंगे कि चीटियों को जब अंदाज लग जाता है कि अब बारिश होनेवाली है तो वे पहले से ही थोड़ा-थोड़ा संग्रह कर लेती हैं और बारिश आती है तो बाहर नहीं निकलतीं; क्योंकि वे जानती हैं कि बारिश में खतरा है। कितना छोटा-सा प्राणी है, पर दिमाग कितना है ? उसे यह खबर है कि बारिश में हमारी कुछ न चलेगी, इसलिए पहले से ही वह कुछ तैयारी कर लेती हैं। पंछी अपना घोंसला बनाते और अपना खाना पा लेते हैं। इस तरह यह सारा काम जो हम करते हैं, वह तो पशु-पक्षी भी करते हैं। लेकिन इतने-से काम से मनुष्य का समाधान नहीं होता। यही मनुष्य की एक विशेषता है, मनुष्य और पशुओं में यही अन्तर है।

दुःख टालने और सुख पाने की कोशिश तो हर प्राणी करता है। लेकिन मान लीजिये खाना-पीना सब कुछ हासिल हो और फिर हमसे पूछा जाय कि क्या तुम्हें और कुछ चाहिए ? तो मानव कहेगा : 'जी हाँ, मुझे बहुत कुछ चाहिए। खाना-पीना न हो तो शरीर को तकलीफ होगी, इसलिए वह तो चाहिए ही, लेकिन उतने से हमारा समाधान नहीं है।' इसीलिए शास्त्रकारों ने कहा है कि 'मानव परमेश्वर की प्रतिमा है।' वैसे कुल दुनिया ही परमेश्वर की प्रतिमा है, पर मनुष्य सोचने लगता है तो उसके हाथ में बहुत शक्ति आती है। वह पालन भी कर सकता है और संहार भी। वह अगर चाहे तो एक ही दिन में कुल कुत्तों का संहार कर सकता है, क्योंकि वे आखिर मनुष्य के आश्रय में ही रहते हैं। फिर भी उसका जी नहीं चाहता कि हम सबका संहार करें। इसके विपरीत वह दूसरी सृष्टि, जीव-सृष्टि का पालन करने की ही कोशिश करता है। कुत्ते मनुष्य के नजदीक आते हैं तो वे कुछ मदद भी करते और कुछ तकलीफ भी देते हैं। जहाँ मनुष्य को उनसे तकलीफ पहुँचती है, वहाँ वह भी उन्हें तकलीफ देता है, उसको मारता है। फिर भी उसे यह इच्छा नहीं होती कि सब प्राणियों को हटा दूँ और अकेला रहूँ।

उपभोग नहीं, त्याग में ही सन्तोष

मानव कुत्ते, बिल्ली, घोड़े पर इसलिए प्रेम नहीं करता कि वे काम में आते हैं। काम में तो आते ही हैं। नहीं तो मनुष्य उसकी सेवा भी नहीं कर सकता। वैसे बच्चों का पालन भी सम्भव नहीं, अगर वे काम न करें। लेकिन सिर्फ उतना ही कारण नहीं है। मनुष्य को मनुष्य प्राणी के अलावा दूसरे प्राणियों पर भी प्रेम करने की इच्छा होती है। अपने लिए दूसरे प्राणियों का उपयोग तो पशु भी करता है। सिंह को लगता है कि भगवान ने खरगोश मेरे पेट में रहने के लिए पैदा किया है। इसीलिए वह भागता है तो सिंह उसके पीछे दौड़ता है और जब वह पकड़ में आ जाता है तो उसे आनन्द होता है। इस तरह पशु खाने के लिए उसका उपयोग करता है, जब कि मनुष्य प्रेम के लिए उपयोग करता है। किसी शेर ने हिरन पर प्यार किया, यह कभी नहीं सुना गया। जब-तब यही सुनाई देता है कि शेर ने हिरन को खा लिया। किन्तु मनुष्य पशुओं पर प्यार भी करता है और उनसे काम भी लेता है। सिर्फ काम लेने से उसे सन्तोष नहीं होता। वह पशु-पक्षियों पर, दूसरे मनुष्यों पर, पास-पड़ोस के लोगों पर प्यार करेगा। उनके लिए कुछ-न-कुछ त्याग करेगा, तभी उसे सन्तोष होगा। केवल भोगों से उसे सन्तोष नहीं होगा।

भोग करना हो तो भी थोड़ा त्याग करेगा। तभी थोड़ी उसमें रुचि रहेगी। यही मनुष्य का एक विशेष लक्षण है। इसीलिए खाना-पीना हासिल हो जाय तो काम हो गया, ऐसा मनुष्य नहीं कहेगा। खाने-पीने के अलावा और भी चीजों की जरूरत होती है। अपने शरीर के बाहर जाकर पशु, पक्षी, प्राणी, पेड़, सृष्टि इन सबपर प्यार करने की इच्छा होती है। मनुष्य का दिल बहुत बड़ा है, जैसे यह आसमान बड़ा है। जिस तरह आसमान में सब कुछ समा जाता है, वह इतना बड़ा है, उसी तरह मनुष्य का हृदय भी बड़ा है। उसके दिल में दूसरे जानवरों के लिए मुहब्बत है, रहम है, हमदर्दी है।

दो विचारधाराओं का संगम-स्थल

आखिर भूदान, ग्रामदान, सर्वोदय-पात्र का काम लोगों ने क्यों उठा लिया? लोगों की कितनी बुरी हालत है, उन्हें पूरा खाना-पीना और कपड़ा भी नहीं मिलता। ग्रामदान से गाँव की फसल बढ़ेगी। उद्योग-दौलत बढ़ेगी। अच्छे मकान बना सकेंगे। अच्छे कुएँ खोद सकेंगे। यह सारा तो होगा। लेकिन इतना ही नहीं, गाँव में प्रेम, हमदर्दी और रहम भी बढ़ेगी। यह हिन्दुस्तान की एक बहुत बड़ी जरूरत पूर्ण करने की कोशिश है। यह एक ऐसा काम है, जिसकी तुलना सरकार की पंचवर्षीय योजना के साथ नहीं की जा सकती। केवल सरकारी योजना से प्रेम, हमदर्दी, स्वावलम्बन की शक्ति, आत्म-विश्वास और शान्ति बढ़ना संभव नहीं। इसीलिए यह काम लोगों को प्रिय लगता है। इसमें एक बाजू से सरकारी अधिकारी और नेता लोग तो दूसरी बाजू से फकीर लोग भी मदद में आते हैं, क्योंकि यह संगम-स्थान है। इसमें मनुष्य की भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों आवश्यकताओं का संगम होता है। इसमें तन बढ़ेगा, तन को संतोष मिलेगा और मन एवं अंतरात्मा को भी।

हिन्दुस्तान में एक ओर यह हवा चलती है कि शरीर-सुख का आत्मसुख के साथ विरोध है। किन्तु अगर शरीर के साथ आत्मा का विरोध होता तो क्या आत्मा मूर्ख था, जो शरीर को धारण किये रहता? क्या जरूरत थी उसे दुश्मन का वह बोझ उठाने की? इसलिए स्पष्ट है कि आत्मा और शरीर एक-दूसरे के दुश्मन नहीं, दोनों दोनों के लिए जरूरी हैं। इसीलिए हिन्दुस्तान में जो यह खयाल चलता है कि 'चलो दुनिया का वास्ता छोड़ दें, जप-तप, उपवास, फाँका करें, लोगों के साथ संबंध न रखें, कपड़े कम करें, अगर हो सके तो नंगे ही रहें'—यह कुल-का-कुल गलत विचार है।

इसके विपरीत दूसरी ओर यह चलता है कि खाओ, पीओ, मौज करो। परमेश्वर की भक्ति आदि का कोई संबंध ही नहीं। सिर्फ 'उत्पादन बढ़ाओ, उत्पादन बढ़ाओ।' भाई, हम भी कहते हैं कि उत्पादन बढ़ाओ। लेकिन जिस देश में आज उत्पादन बढ़ा है, वहाँका क्या हाल है? सौवाला हजार चाहता है और हजारवाला दस हजार, इस तरह वह आगे ही बढ़ता जाता है। इस तरह एक बाजू यह चलता है कि बढ़ाते चले जाओ और दूसरी बाजू सब कुछ छोड़ो, नंगे बनो, फकीर बनो। दोनों हवाएँ एक-दूसरे के विरोध में बह रही हैं। इनका विरोध मिटाने के लिए ही यह काम चल रहा है। ग्रामदान में हम अपने गाँव के लिए त्याग करते हैं तो मनुष्य को त्याग की तालीम मिलती है। गाँव की फसल बढ़ेगी तो शरीर को सुख और लाभ तो मिलेगा ही।

इस तरह दोनों का विरोध मिटाने के लिए यह एक युक्ति ही मिल गयी है। इससे समाज की, बाहर की और अंदर की हालत भी सुधरती जा रही है। इसीलिए हिन्दुस्तान के लोगों को इस ओर बड़ी दिलचस्पी मालूम हो रही है। फिर भी आज वे ऐसी हालत में नहीं हैं कि विचार समझ लें और उसके मुताबिक स्वयं ही काम करें, क्योंकि उन्हें तालीम नहीं है। सैकड़ों वर्षों से वे गुलाम बने हैं, इसलिए उनमें अब यह शक्ति नहीं रही है कि अपने काम खुद ही करें। उसे विकसित करने का काम आज हमें करना है। इसलिए कार्यकर्ता, सेवक, भक्तजन, जो भी नाम दें, उनकी आज बहुत जरूरत है।

'सेवक-वर्ग' और 'सेवक-समूह' का भेद

कुछ लोग कहते हैं कि आज लोगों की ऐसी हालत नहीं है कि वे अपने पाँवों पर खड़े रहें। लेकिन भाइयो, जो हालत है सो है ही। अच्छी है या नहीं, यह कहकर क्या करोगे? कार्यकर्ता-वर्ग खड़ा करने की जरूरत है, वह लोगों में से ही खड़ा किया जा सकेगा। 'लोगों के सेवक' के बदले अगर 'सरकारी सेवक' खड़े होंगे तो काम को भी सरकारी रूप आयेगा। लेकिन अगर लोगों में से ही कार्यकर्ता खड़े हो जायँ तो उनकी चिंता लोग ही करेंगे और पहले सेवकों द्वारा प्रेरणा पाकर धीरे-धीरे वे खुद ही वह काम उठा लेंगे। इस तरह एक दिन वह सेवक-वर्ग समाप्त हो जायगा। हमें अपने को समाप्त करनेवाला सेवक-वर्ग चाहिए, अपने को कायम रखनेवाला नहीं। सरकारी वर्ग अपने को कायम रखता है। अभी एक पत्र आया कि दो-तीन ग्रामदानी गाँवों में सरकार स्कूल खोलेगी। बेकारी निवारण के लिए ये स्कूल खोले जाते हैं। याने वह शिक्षकों की बेकारी निवारण करने का एक साधन होता है, लोगों के अज्ञान-निवारण का प्रयास नहीं। इससे लोगों का अज्ञान जायगा या रहेगा? यदि अज्ञान चला जायगा तो उनकी जरूरत भी न रहेगी। इसलिए यही होगा कि अन्धे लोग अन्धे ही रह जायँ और ये उनका हाथ पकड़कर ले जायँ और उनकी सेवा करें।

किन्तु हम ऐसा सेवक-वर्ग खड़ा करना चाहते हैं, जो जनता में से ही खड़ा हो, जनता की सेवा करे और आखिर जनता में ही लीन हो जाय। जैसे मिट्टी में से घड़ा बनता और पुनः वह मिट्टी में ही लीन हो जाता है, वैसे ही सेवक-वर्ग लोगों में से ही खड़ा हो और लोगों में ही लीन हो जाय, समाप्त हो जाय। सरकारी सेवक और लोकसेवकों में यही फर्क है कि लोक-सेवक अपने को जल्द-से-जल्द खत्म करना चाहेगा। आजकल हम शान्ति-सेना की बात करते हैं। अगर देश में अशांति ही न होगी तो वे लोगों के खेतों में जाकर उनकी मदद करेंगे और जब अशांति होगी तो शान्ति-स्थापना के लिए मर-मिटने को भी तैयार रहेंगे। इस प्रकार का सेवक-समूह हम तैयार करना चाहते हैं।

हम उसे 'सेवक-वर्ग' नहीं, 'सेवक-समूह' कहते हैं। 'सेवक-वर्ग' वह है, जो अपने को कायम रखने की कोशिश करे। और 'सेवक-समूह' वह है, जो अपने को मिटाने की कोशिश करे। भारत को सेवक-समूह की बहुत जरूरत है। ऐसा अगर हो तो लोगों में प्रेम और विश्वास बढ़ेगा। वे थोड़ा-सा काम करें तो भी वह बहुत हो जाता है, बहुत ज्यादा दीखने लगता है, जिससे लोगों में उनके प्रति अनुकूल मन की भूमिका तैयार होती है। यही कारण है कि हम जहाँ-जहाँ जाते हैं, लोग एकदम यह काम उठा लेते हैं। ऐसी हालत में हम चन्द दिनों के लिए सतत जोर लगायें तो कुछ भारत में काम कर सकते हैं और साधारण-समाज में सेवक-समाज लीन हो सकता है।

विज्ञान-युग में मंजिल दूर नहीं

जब विज्ञान नहीं था, तब हालत अलग थी। किन्तु आज विज्ञान बहुत ज्यादा फैल रहा है, लोगों का परस्पर सम्बन्ध भी बहुत बढ़ गया है। ऐसी हालत में अब पुरानी व्यवस्था चल नहीं सकती, नयी व्यवस्था लानी ही होगी। गाँव-गाँव में

अपनी व्यवस्था हो और हर गाँव का दूसरे गाँव के साथ सम्बन्ध भी हो, फिर इन सेवकों की चन्द दिनों के लिए जरूरत रहेगी। हम दूर का फासला नहीं देखते। विज्ञान का जमाना जोर लगा रहा है, पचीस साल में भी खत्म हो सकता है, इसी उम्मीद से हमने काम शुरू किया है। थोड़ा करेंगे तो थोड़ा होगा।

सर्वोदय-पात्र से लोक-सम्मति की और सेवकों की योजना हो जायगी तो एक दिन आयेगा, जब सेवक-समाज, सेवक-समूह समाज में लीन हो जायगा और समाज ही रहेगा। गाँव-गाँव में उत्तम सफाई होगी। आज तो सब अपना-अपना आँगन साफ करते हैं और बीच की जगह खाली रखते हैं तो उसे साफ करने के लिए फिर ग्राम-सफाई का कार्यक्रम निकालना पड़ता है। लेकिन दोनों अगर तय करेंगे कि हम आधा-आधा कर लेंगे तो ग्राम-सफाई हो जायगी। इस तरह अपना-अपना कर्तव्य क्या है, वह समझ लेंगे तो सेवक-समूह की जरूरत ही नहीं रहेगी। समाज ही सेवक बन जायगा।

हमारे मन में ऐसे विचार सतत चलते ही हैं। गाँव-गाँव में अगर सर्वोदय-पात्र होता है तो उससे सेवक-समूह खड़ा करने में मदद होती है और उससे सेवक-समूह मिटाने में भी मदद मिलती है। सरकार को जब टैक्स देते हैं तो सेवक-वर्ग कायम रखने में मदद मिलती है, उसे खत्म करने में नहीं। ●●●

प्रार्थना-प्रवचन

भीलवाड़ा (राजस्थान) १२-२-'५९

प्रेमी, अनाक्रामक और त्यागी ही विज्ञान का एकमात्र अधिकारी

हमारा भारत देश बहुत पुराना है और दुनिया में इसकी अपनी विशेषता है। दुनिया जानती है कि भारत की तरफ से कभी भी दूसरे देशों पर आक्रमण नहीं हुआ है। जिस वक्त भारत में सत्ताशाली राजा और सम्राट थे, भारत विद्या और कला से सम्पन्न हो ऐश्वर्य के शिखर पर पहुँचा हुआ था, तब भी भारत की तरफ से दूसरे देशों पर आक्रमण हुआ हो, इसका एक भी उदाहरण नहीं है। भारत कोई छोटा-मोटा नहीं, बहुत बड़ा लम्बा-चौड़ा विशाल देश है। फिर भी इतने बड़े देश के इतिहास में विदेशों पर आक्रमण करने की एक भी घटना नहीं है। यहाँसे विद्या और धर्म का संदेश लेकर जो भारतीय चीन, जापान, लंका, तिब्बत, ब्रह्मदेश और मध्य एशिया में गये, वे साथ में कोई शस्त्र लेकर नहीं गये और न कोई सत्ता लेकर गये। वे केवल ज्ञान-प्रचार के लिए गये और थोड़े-से व्यापारी व्यापार के लिए भी गये। लेकिन कभी भी, कहींसे यह शिकायत नहीं आयी कि भारत ने दूसरे पर विचार का भी हमला किया। भारत अपनी सत्ता दूसरे देश पर चलाना तो चाहता ही नहीं, परन्तु विचार का भी हमला उसने कभी नहीं किया। केवल विचार समझाकर ही संतोष रखा, यह भारत की एक बड़ी खूबी है। इसलिए हमें गौरव महसूस करना चाहिए। भारतीय इतिहास की यह खूबी हमारे लिए बहुत गौरव की बात है। आज वर्षों बाद—ठीक बोलना हो तो कोई दो हजार साल बाद—भारत को यह मौका मिल रहा है कि सारे भारत में वह अपनी सभ्यता को और भी उज्ज्वल रूप में पेश करे और यह दिखा दे कि आज के विज्ञान-युग में विज्ञान के लायक अगर कहींका विचार है तो भारत का ही विचार है।

भारत सदैव मुक्त चिन्तन का पक्षपाती

हिन्दुस्तान में हमने किसी एक पुरुष के नाम से धर्म नहीं चलाया। अवश्य ही हिन्दू-धर्म में सैकड़ों महापुरुष हो गये—राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर, कपिल और पतंजलि, वामदेव और वशिष्ठ, जनक और याज्ञवल्क्य, अशोक और श्रीहर्ष, शंकराचार्य और रामानुज आदि असंख्य नाम हम ले सकते हैं। कबीर और मीरा, प्रताप और शिवाजी, तुलसीदास और चैतन्य, इस तरह नाम लेता चला जाऊँगा तो विष्णु-सहस्रनाम की तरह भारतीय महापुरुषों के भी सहस्रनाम बन सकते हैं। हिन्दुस्तान पर महापुरुषों की वर्षा ही हुई है। यह इस देश के लिए अभिमान की एक बात हो सकती है। अगर हम उनका नाम लेकर, उनके कार्य को आगे बढ़ाने की प्रतिज्ञा करते हैं तो उनके नाम का गौरव हो सकता है। फिर भी हमने किसी भी महापुरुष के नाम के साथ अपने विचार को बाँधा नहीं है, जैसे कि ईसा ने ईसाई धर्म को 'क्राइस्ट' के साथ बाँध दिया है। हम लोग तो ईसामसीह का भी नाम बड़े गौरव के साथ लेते हैं, क्योंकि महापुरुषों में हम फर्क नहीं करते, चाहे वे हिन्दुस्तान के हों या बाहर के। यह भारत की विशेषता ही है और इसीलिए हम गौरव करते हैं ईसामसीह के नाम का। उनके नाम का अभिमान हमें मालूम होता है, पर ईसामसीह कितने भी बड़े हों, हम यह मानने को राजी नहीं कि किसी एक महापुरुष के जरिये ही हम भगवान के पास पहुँच सकते हैं। हमारा और भगवान का सीधा सम्बन्ध हो सकता है। हमारे बीच ऐसे किसीकी आवश्यकता नहीं, किसी एजेन्सी की आवश्यकता नहीं। सारांश, भारत में अनेक महापुरुषों के नाम चलते रहने पर भी हमने किसी भी एक विचार के साथ भारतीय विचार को नहीं बाँधा है। भारतीयों ने हमेशा मुक्त चिन्तन किया है। हिन्दुस्तान के दर्शन ने विज्ञान के साथ कभी झगड़ा नहीं किया। शंकराचार्य ने तो यहाँ तक कह रखा है कि यदि साक्षात् श्रुति भी 'अग्नि ठंडा है' ऐसा कहे तो हम उसे मानने के लिए बाध्य नहीं। अर्थात् विज्ञान की जो प्रत्यक्ष अनुभव की बात होगी, उसके विरुद्ध वेद भी नहीं बोलते, न बोलना चाहते हैं।

यहाँ धर्म-विचार का विज्ञान से विरोध नहीं

इतिहास के जानकारों को मालूम है कि यूरोप में धर्म और विज्ञान के बीच बाकायदा लड़ाई चली। विज्ञान ने कहा कि 'पृथ्वी सूर्य के इर्द-गिर्द घूमती है' तो वहाँके धार्मिकों ने उसका यह कहकर विरोध किया कि 'यह बात हमारे धर्मशास्त्र के विरुद्ध है।' यह एक अजीब-सी बात है कि विज्ञान का जहाँ ज्यादा-से-ज्यादा विकास हुआ, वहीं उसका घोर विरोध भी हुआ। विज्ञान को धर्मवालों के खिलाफ खड़ा होना पड़ा और धर्मवालों ने विज्ञानवालों को खूब सताया। यहाँ तक कि जेलों में डाला और कईयों को मारा भी। ईसाई संस्थाओं और पोप की तरफ से उन्हें बहुत ज्यादा तकलीफें भोगनी पड़ीं। गैलिलियो को इसलिए जेल में डाला गया कि वह कहे—'पृथ्वी नहीं घूमती।' लेकिन वह समझता था और उसके प्रयोगों ने उसे दिखा दिया था कि पृथ्वी तो घूम रही है। आखिर उसे जब बहुत सताया गया तो उसका दिल थोड़ा कमजोर होने लगा। लेकिन उसकी ज्ञान-बुद्धि जागृत हो गयी और उसने कहा 'नहीं, मैं चाहता हूँ कि पृथ्वी न घूमे, लेकिन वह घूमती है, क्या करूँ? इसलिए मैं नहीं कह सकता कि पृथ्वी नहीं घूमती' : it moves

and moves and moves. not with standing mysalf It moves किन्तु ऐसा कोई विरोध हिन्दुस्तान में नहीं आया, ज्ञान-शिरोमणि शंकराचार्य ने ऐसा जाहिर ही कर दिया कि 'ज्ञानं न पुरुषतन्त्रम् किन्तु वस्तुतन्त्रम् ।' ज्ञान मनुष्य की मर्जी पर नहीं, वस्तु के स्वरूप पर निर्भर है। इसलिए वस्तु-स्वरूप के बारे में किसीकी आज्ञा नहीं चल सकती। वस्तु-स्वरूप के सामने सारी आज्ञाएँ कुंठित होती जाती हैं। वस्तु का स्वरूप वस्तु ही निश्चय करेगी, मनुष्य-बुद्धि नहीं। इसी तरह मनुष्य यह नहीं मान सकता कि 'वर्तुल वर्तुल नहीं, त्रिकोण है और त्रिकोण वर्तुल है।' त्रिकोण का स्वरूप त्रिकोण पर निर्भर है तो वर्तुल का स्वरूप वर्तुल पर। पृथ्वी का स्वरूप पृथ्वी पर और सूर्य का स्वरूप सूर्य पर निर्भर है। मेरी मर्जी, मेरे वाक्यों या मेरे अर्थों पर निर्भर नहीं। शंकराचार्य ने यह कहकर मानो विज्ञान के लिए मेग्नाचार्टा ही दे दिया कि 'विज्ञान! खुलकर सामने आओ, हमारे धर्म-विचार से तुम्हारा कोई विरोध नहीं।'

इस तरह स्पष्ट है कि हिन्दुस्तान में धर्म-विचार से विज्ञान का कभी भी विरोध नहीं माना गया। अब भारत के सामने मौका है कि वह दिखा दे कि भारत का धर्म-विचार वैज्ञानिक है और हम विज्ञान का स्वागत करते हैं। हम चाहते हैं कि विज्ञान खूब आये। उससे भारत का विचार परिपुष्ट ही होनेवाला है। हमारे आत्मज्ञान या वेदान्त-दर्शन को, जिसका दर्शन इस भारत-भूमि में हुआ था, विज्ञान से बल ही मिलेगा। वह कुण्ठित नहीं होगा।

विज्ञान से भी हमारा धर्म कुण्ठित होनेवाला नहीं है। यूरोप में यह धर्म-विचार चला कि 'परमेश्वर एक सृष्टिकर्ता है और दुनिया के किसी एक घोंसले में बैठ, वहींसे सारी दुनिया पर राज्य करता है', लेकिन हमारे दार्शनिकों का मत है कि हमारा परमेश्वर ऐसा सुलतान नहीं है। हमारा ईश्वर तो कर्म-सापेक्ष है। वह बारिश की माफिक बरसेगा, लेकिन खेती हम ही करेंगे। वह हमारे कर्तृत्व के खिलाफ नहीं जा सकता। वह तो कर्म का फल देकर मुक्त रहेगा, किसीपर कोई चीज नहीं लादेगा। शास्त्रकारों ने कह दिया है कि हम किसीको भी दुनिया का पति, परमेश्वर या लार्ड नहीं मानते। ऐसे पति को मानना अधर्म है। हमारा ईश्वर एक घोंसले में नहीं, घट-घट में विराजमान है। वह अन्तर्यामी है, जो हमारे हृदय में रहता है, हमारी अन्तःप्रेरणा के अन्दर छिपा है। इस तरह स्पष्ट है कि हमारे आगे एक मैदान खुला पड़ा है। अगर विज्ञान पर किसीका अधिकार हो सकता है और विज्ञान का अत्यन्त निर्भयता के साथ कोई स्वागत कर सकता है तो हिन्दुस्तान ही कर सकता है।

सह-अस्तित्व का आदर्श

हिन्दुस्तान आक्रमण में नहीं, प्रेम में ही विश्वास रखता है। भारत में शक, हूण, आर्य, यहूदी, पारसी, ईसाई, चीनी, जापानी सभी आये। हमने सबको कबूल किया, सबको बसाया, सबपर प्यार किया, सबको 'एडजस्ट' किया। हमने 'सह-अस्तित्व' की कल्पना हिन्दुस्तान में चलायी। आज हिन्दुस्तान के 'पंच-शील' का नाम सारी दुनिया में बोला जा रहा है। पंचशील का अर्थ है, जीवन में विविधता को सहन करना। यही भारतीय संस्कृति है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अपने-अपने अलग जीवन हैं। किन्तु भारतीय संस्कृति बता रही है कि वैश्य या शूद्र को मुक्त होने के लिए ब्राह्मण बनने की जरूरत नहीं। निष्काम भावना से जो अपने-अपने कर्म में रत रहेंगे, वे उसी कर्मयोग से परमेश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः'। अपने-अपने कर्म में तत्पर रहकर निष्काम भावना से भगवत्-पूजा समझकर व्यापार करनेवाले व्यापारी भी मुक्त हो सकते हैं। हमारा धर्म बतलाता है कि व्यापारी अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए पैसा रखें और स्वयं उसके ट्रस्टी बनें। इस तरह यदि ट्रस्टी बनकर उसका उपयोग करते हों तो व्यापार और धन-संग्रह करते हुए भी वे परमेश्वर के पास पहुँच सकते हैं, मोक्ष पा सकते हैं। यह बहुत बड़ी बात थी। यही सह-अस्तित्व है। याने यहाँ दुनियाभर की भिन्न-भिन्न जमातें रह सकती हैं, अपना-अपना जीवन जी सकती हैं। अपने-अपने देवता की भक्ति कर सकती हैं, अपने-अपने धर्मग्रन्थों का पठन कर सकती हैं। एक-दूसरे के साथ टकराने का कोई कारण ही नहीं। इसी तरह सभी प्रेम से और निष्काम भाव से समाज की सेवा करने लगें तो सुख से जी सकते हैं। कोई कारण नहीं कि जीवन का एक ढाँचा दूसरों पर लादा जाय।

विचार लादने का प्रश्न ही नहीं

एक भाई ने हमसे पूछा : 'आपका यह ग्रामदान तो दीखने में बड़ा उम्दा दीखता है, लेकिन शायद लादा जा रहा है, यानी यदि आप 'जमीन समाज की' कहते हैं तो मनुष्यों को अपने-अपने ढंग से जीने की सहूलियत रहेगी या नहीं?' हमें ऐसे प्रश्नों से खुशी होती है। हम चाहते हैं कि सद्-विचार में भी अगर कोई असद् अंश रह गया हो तो उसे साफ कर लेना चाहिए। कितने भी बड़े सद्-विचार को हम जैसा-का-तैसा निगलने के लिए तैयार नहीं, विचार की छान-बीन करना चाहते हैं। बहुत-से लोग ग्रामदान का नाम सुनकर खुश हो जाते और कहते हैं कि अब तो बाबा जमीन की मालकियत मिटाने की बात कहता है। अब जमीन सबकी हो जायगी। कुल जमीन इकट्ठा कर सहकारी खेती के बड़े-बड़े प्रयोग किये जायँगे। फिर बाबा से पूछा जाता है कि 'क्या आप ऐसा करनेवाले हैं?' मैं कहता हूँ : ऐसा कर भी सकते हैं और नहीं भी कर सकते। ग्रामदान में हम 'भी-वादी' हैं, 'ही-वादी' नहीं। याने यह भी होगा और वह भी होगा। गाँववाले जिस तरह सोचेंगे, उस तरह होगा। ग्रामदान ग्राम-स्वराज्य की घोषणा है। गाँववाले अपने-अपने गाँव में मिल-जुलकर जो व्यवस्था करेंगे, वही व्यवस्था चलेगी। उनपर बाहर से कोई व्यवस्था लादी नहीं जायगी। अगर वे अलग-अलग खेती करना चाहेंगे तो अलग खेती कर सकेंगे और यदि दो-चार-दस इकट्ठा होना चाहें या सारे गाँव को इकट्ठा करना चाहें तो वैसा भी कर सकेंगे। सबकी आवाज एकमत से काम करेगी। अगर भिन्न आवाज हुई तो दोनों प्रकार के प्रयोग चलेंगे। लेकिन मालकियत गाँव की रहेगी और परिणामस्वरूप गाँव-गाँव में स्वराज्य आयेगा।

बाजार-भाव गाँववालों के ही हाथ में रहना संभव

तीन दिन पहले की बात है, अखबार में खबर आयी थी कि बारासूली, (मध्य प्रदेश) में गेहूँ का भाव ३७) रु० मन हो गया है, यानी एक रुपये में ९० तोला = १ सेर २ छटाँक। सोचने की बात है कि लोग अब क्या खायें और कैसे जीयें? यह जो गेहूँ का भाव चढ़ गया है, उसे कौन रोकेगा? बड़े मन्त्री कहते हैं कि हम रोकेंगे। लेकिन जब वे अपने साधारण जीवन को भी संयम में नहीं रख सकते तो हिन्दुस्तान को क्या रोकेंगे? मिनिस्टर इसे नहीं रोक सकते और न कानून से ही यह रुक सकता है। यह तभी रुकेगा, जब गाँववाले इसे अपने हाथ में रखें। आपके गाँव में दो साल के लिए जितना गेहूँ चाहिए,

उतना सुरक्षित रखने के बाद बचा हुआ गेहूँ ही बाहर भेजें। कम-से-कम सालभर का तो रखें। इस तरह गाँव के कुल लोगों के लिए सालभर का अनाज गाँव में सुरक्षित रख लेने का अधिकार गाँववालों को अपने हाथ में उठाना होगा और उन्हें निर्णय करना होगा कि हमारे गाँव में हमारी ही चलेगी, दूसरे किसीकी नहीं। आज तो यह स्थिति है कि अनाज व्यापारियों के पास भरा पड़ा है और भाव मँहगा होता जा रहा है। मान लीजिये, इसके लिए सरकार अपने हाथ में व्यापार ले ले। किन्तु आखिर सरकार व्यापार करेगी तो किसी व्यापारी के जरिये ही करेगी। निश्चित है कि यह काम सरकार से नहीं बनेगा। लोकतंत्र के कुल में स्वभाव में ही यह बात नहीं है कि किसी प्रकार का कण्ट्रोल लगाया जा सके। लोकतंत्र अपने ढंग से चलना चाहे तो चल सकता है, पर जिस ढंग से अयूबखाँ चलाना चाहता है, उस ढंग से नहीं, यह निश्चित है। किन्तु गाँव का बच्चा भी कह सकता है कि हमारा गाँव हमारे हाथ में रहेगा, हम सब मिल-जुलकर काम करेंगे। हमारे गाँव में एक भी मनुष्य भूखा न रहे, इसकी जिम्मेदारी हम उठायेंगे। अपने गाँव की चीजें हम पैदा करेंगे और बाहर की चीजों का बहिष्कार करेंगे और गाँव का अनाज जितना हमारे लिए चाहिए, उतना रख लेंगे। ऐसा वे निर्णय करें तो सारे भावों को अपने हाथ में रख सकते हैं। अगर यह बाजारभाव किसीके हाथ में रह सकता है तो गाँववालों के हाथ में रह सकता है, यह निश्चित समझें।

एक होने में विज्ञान का उपयोग सम्भव

जब हम गाँव में ग्राम-स्वराज्य का संकल्प करते हैं, जमीन सबकी बनाते हैं तो हरएक को थोड़ी-थोड़ी जमीन देते हैं, जिनको ज्यादा जमीन नहीं दे सकते, उन्हें ग्रामोद्योग देते हैं और गाँव की मुख्य जरूरतें गाँव में ही पूरी करने की योजनाएँ करते हैं; तभी हम अपने गाँव में पूरा अनाज पका सकते हैं और आवश्यक अनाज अपने पास रखकर बचा हुआ अनाज शहरों को दे सकते हैं। हम शहरों को भूखों मारना नहीं चाहते, क्योंकि हिन्दुस्तान में अनाज खूब पैदा हो सकता है। फसल खूब बढ़ सकती है। आज जितना अनाज यहाँ पैदा होता है, उससे चार गुना यहाँ पैदा हो सकता है। किन्तु यह विज्ञान की मदद से ही होगा और विज्ञान का उपयोग भी तभी हो सकेगा, जब गाँव के सब लोग मिल-जुलकर काम करेंगे। एक-एक व्यक्ति विज्ञान का उपयोग नहीं कर सकता। इसीलिए मैंने कहा कि 'विज्ञान, भारत में आओ, तुम्हारा स्वागत है! तुमसे हमारे किसी धर्मविचार और तत्त्वज्ञान में बाधा नहीं आती।' हम वैज्ञानिक बनना चाहते हैं और विज्ञान का उपयोग भारत की खेती में करना चाहते हैं। अगर सारे गाँववाले मिल-जुलकर काम करें तो विज्ञान का उपयोग अच्छी तरह कर सकते हैं। फिर ये अनाज के भाव अपने हाथ में आ सकते हैं। आज गाँववाले अपना अनाज बाजार की चीज समझकर उसे बाजार में ले आते हैं और उसका मूल्य कम हो जाता है। वे अनाज को अपने घर की चीज क्यों नहीं बनाते? गाँववालों को अपने घर का अनाज बेचकर मौके पर बाहर से खरीदने की नौबत क्यों आये? ये सारी बातें सम्पन्न करने के लिए ही 'ग्रामदान' है। ग्रामदान में किसीको मजदूर बनाने की बात हर्गिज नहीं। अगर ग्रामदान में किसीको मजदूर बनाने का विचार होता तो भारतीय संस्कृति को जाननेवाला मैं उसे हर्गिज कबूल नहीं करता।

भारत को त्याग का विचार अतिप्रिय

दो-तीन दिनों से हम एक बड़ा आश्चर्यकारी दृश्य देख रहे हैं कि जिन-जिन गाँवों में हमने कहा कि 'सर्वोदय की सेवा और शान्ति के काम के लिए घर-घर में मुट्ठी भर अन्न सर्वोदय-पात्र में डाला करें', वहाँ-वहाँ सर्वोदय-पात्र रख दिये गये। मैं सुनकर ताज्जुब में रह गया कि यह कौन-सा विचार है, जिससे हर घर में 'सर्वोदय-पात्र रखा गया! स्पष्ट है कि यह त्याग का विचार है। यदि भारतीयों से उनकी शक्ति के अनुरूप थोड़ा-बहुत त्याग करने की बात कही जाय तो उन्हें वह विचार बहुत पसन्द पड़ता है। बाबा के व्याख्यानों के लिए हजारों की भीड़ उमड़ पड़ती है, इसका कारण और कुछ नहीं, उसका त्याग और प्रेम का संदेश सुनाना ही है। वह भारतीय संस्कृति का संदेश है, इसलिए इसे सुनने के लिए लोग उत्सुक रहते हैं और उमड़ पड़ते हैं। मैं जानता हूँ और सभी जानते हैं कि इस जमाने में त्याग कुछ कठिन है, जब कि देश में अत्यन्त दारिद्र्य है, लेकिन फिर भी लोग त्याग कर ही रहे हैं। गत आठ सालों में हमने यह मजा देखा। हिन्दुस्तान में छह लाख दानपत्रों के जरिये ४२ लाख एकड़ भूमि मिली है। जिसके सामने हाथ फैलाया, उसने दिया ही। ऐसा कोई शख्स नहीं मिला कि जिसके सामने हाथ फैलाया और उसने न दिया हो। इस तरह प्रेम का यह संदेश भारत का अपना सन्देश है और यदि यूरोपवाले इसे कबूल करें तो विज्ञान पर उन्हें भारत जितना ही पूरा हक रहेगा।

बड़े दुःख की बात है कि आज विज्ञान हिन्दुस्तान के पास ज्यादा है ही नहीं, उसे हमें पश्चिम के लोगों से सीखना है। उसे सीखने का हमें पूरा अधिकार है। अहिंसा के तरीके से विज्ञान का उपयोग कर हम दिखा दें कि 'भारत की समस्याएँ प्रेम से हल की जा सकती हैं। भारत का गाँव-गाँव आजाद बन गया है और सभी प्रेम से कारोबार चला रहे हैं। हमने विज्ञान का पूरा उपयोग कर फसल बढ़ायी है। हम प्रेम से एक-दूसरे के साथ रहते हैं। भारत में आपस का कोई भी झगड़ा है ही नहीं।' आज यूरोप और अमेरिका के लोग चाहते हैं कि भारत इस दिशा में हमारा पथ-प्रदर्शन करे।

विदेशी पथ-प्रदर्शन चाहते हैं

कनाड़ा के एक भाई हमारे पास आये थे। चार-पाँच रोज हमारे साथ रहे। इसके पहले अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्विट्जरलैण्ड, जापान और चीन के लोग भी समय समय पर हमारी यात्रा में आये। कोई ५ दिन, कोई १० दिन तो कोई महीनेभर हमारे साथ रहा। एक जापानी भाई मेरे साथ ढाई-तीन महीना रहे। मैंने उनसे जापानी भाषा भी सीख ली। एक जापानी भाई तो हमारे साथ घूम ही रहे हैं। आखिर ये सारे क्यों आते हैं और क्या देखना चाहते हैं? स्पष्ट है कि ये भारत से तरीका सीखना चाहते हैं। विज्ञान तो उनके पास है ही, लेकिन एक साथ कैसे रहा जाय, सह-अस्तित्व कैसे किया जाय, यह वे जानते ही नहीं। किन्तु भारत में लोग यह भलीभाँति जानते हैं। भारत में इतनी सारी जमातें हैं और सर्वसम्पन्न १४ भाषाएँ हैं, फिर भी हमने भाषा के अनुसार देश नहीं बनाये। एक ही राष्ट्र में अनेक भाषाएँ रखकर हम सारे एक साथ रहते हैं। हिन्दुस्तान के इतिहास में यह एक बहुत बड़ी बात है। ऐसी स्थिति में अगर अब हिन्दुस्तान प्रेम के तरीके से जमीन का मसला, ग्राम-स्वराज्य का मसला, शांति का मसला और अन्न-उत्पादन का मसला हल करके दिखाता है तो उसे देखने के

लिए अमेरिका और यूरोप के लोग लालायित हैं। वे भूदान, ग्रामदान पर ग्रन्थ लिख रहे हैं। यद्यपि हम अभी बहुत ज्यादा नहीं कर पाये हैं, फिर भी एक राह खुल गयी है, जिससे यूरोप और अमेरिकावालों को बड़ी आशा मालूम होती है। अगर यह राह पूरी खुल जाय और शांति के तरीके से देश के अहं मसले, महत्त्व के प्रश्न हम हल कर सकें तो एक बहुत बड़ी कुंजी हाथ आ जाय।

राणाप्रताप के मेवाड़ से आशा

मुझे पूरा विश्वास है कि राणाप्रताप के इस मेवाड़ प्रदेश में भक्ति की कोई कमी नहीं और न पराक्रम की ही कमी है। अतः यदि आप सहकार और सहयोग से ग्राम-स्वराज्य की योजना करें, घर-घर में सर्वोदय-पात्र रखें, सेवा और शान्ति-सैनिक के लिए अपना नाम दें और गाँव-गाँव जाकर सेवा करें तो मेवाड़ में बहुत बड़ी बात बन सकती है। अब चन्द दिनों में मेवाड़ की हमारी यात्रा समाप्त होगी और हम राजस्थान के दूसरे हिस्से में जायँगे। भगवान ने चाहा तो पंजाब और कश्मीर भी जाना चाहते हैं और फिर से राजस्थान में वापस आना चाहते हैं। लेकिन आप सब लोगों ने जैसा प्रेम आज सुबह दिखाया, उसी तरह प्रेम से कुल गाँव एक हो जायँ और ग्राम-संकल्प करें। आप लोग डरें नहीं और न यह समझें कि बाबा जबरदस्ती से खेती एक करने की बात कहता है। बाबा यही कहता है कि जो लोग एक होना चाहते हैं, वे एक हो जायँ और जो अलग रखना चाहें, वे अलग रखें, लेकिन मालकियत मिटा दें; ताकि जमीन बेची न जा सके, रेहन रखी न जा सके या सौंपी न जा सके। बाबा चाहता है कि जमीन गाँव के लोगों के हाथ में रहे। वे मिल-जुलकर काश्त करें और अपने गाँव में ग्राम-स्वराज्य लायें। उसका नमूना क्या होगा, यह हर-एक गाँववालों की अक्ल पर बाबा छोड़ना चाहता है। बाबा का कोई आग्रही विचार नहीं है। बाबा की यही एक इच्छा है कि भारत की अहिंसा और त्याग की जो संस्कृति है, उसके साथ विज्ञान जुड़ जाय। विज्ञान और आत्मज्ञान दोनों मिलकर भारत खूब मजबूत बने, दुनिया को बचाये और खुद बचे।

मिल-मालिकों के बीच

सरबज (अहमदाबाद) १९-१२-'५८

व्यापारी समाज के लिए ही संग्रह करें

बड़ी खुशी की बात है कि आज मुझे आप लोगों के समक्ष अपने विचार उपस्थित करने का अवसर प्राप्त हो रहा है। वैसे मेरा प्रवचन सार्वजनिक ही हुआ करता है और उसमें मैं सभी वर्गों के बारे में अपने विचार तथा उनसे की जानेवाली अपेक्षाओं पर प्रकाश डालता रहता हूँ। इस तरह व्यापारियों के बारे में मेरे विचार भी उसमें आ जाते हैं और वे उन तक पहुँच भी जाते होंगे। यही सोचकर महाराष्ट्र की यात्रा के बीच मैं बम्बई नहीं गया। मुझे लगा कि वहाँ जाकर मैं उनके समक्ष भी अपने ये विचार रखूँ तो कदाचित् वह आक्रमण-सा न हो जाय, जबर्दस्ती न हो जाय। मैं अपने काम में किसी-पर किसी तरह की जोर-जबर्दस्ती या आक्रमण करना नहीं चाहता। मैं मानता हूँ कि सत्य का विचार कोई टाल ही नहीं सकता। उस विचार के प्रवाह में सबको बहना ही पड़ेगा। भगवान ने सबको बुद्धि दी है और उस बुद्धि को इस प्रवाह के अनुकूल प्रवाहित होना ही पड़ेगा तथा वह होकर रहेगी। इसलिए मैं नम्रतापूर्वक विचार प्रस्तुत कर देना मात्र अपना काम मानता हूँ और इसी ढंग से काम करता आ रहा हूँ।

बापू के 'ट्रस्टीशिप' सिद्धान्त पर एक दृष्टि

आप जानते ही हैं कि गांधीजी 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त पर अत्यधिक जोर दिया करते थे। वे यह आशा रखते थे कि यहाँके व्यापारी, महाजन और मालिकों को भी यहाँकी हवा और मिट्टी की यह सद्भावना प्राप्त है—कारण वे यहीं पैदा हुए हैं और इसी आबोहवा में पले हैं—इसलिए हिन्दुस्तान में यह सर्वथा संभाव्य है कि ये लोग ट्रस्टी के तौर पर सारे समाज के सेवक बन जायँ। वे विश्वास भी रखते थे कि यह बात यहाँ होकर रहेगी। एक बार तो कई भाइयों के साथ बैठकर उन्होंने इस विषय पर गंभीर चर्चा भी की और उन्हें ट्रस्टीशिप का अर्थ भी समझाया। उसी आधार पर एक मसविदा भी तैयार किया गया। यह सारी कहानी प्यारेलालजी ने सर्वथा तटस्थ दृष्टि से अपने 'लास्ट फेस' में प्रकाशित की है। फिर वह मसविदा घनश्यामदासजी बिड़ला को दिया गया और उनसे कहा गया कि 'इसपर विचार करें।' उन्होंने भी कहा कि 'इस बारे में मैं अन्य व्यावसायिकों से भी चर्चा करूँगा।' यद्यपि वह मसविदा प्रकाशित कर देने योग्य था, लेकिन यह कहकर उसका प्रकाशन रोक दिया गया कि व्यवसायियों से चर्चा करने के बाद उनकी ओर से इसपर कहाँ तक स्वीकृति मिलती है, यह देखकर ही छापा जाय। इसके बाद प्यारेलालजी लिखते हैं कि 'इस मसविदे का बाद में क्या हुआ, पता नहीं।' मजे की बात यह है कि प्यारेलालजी और घनश्यामदासजी दोनों दिल्ली में ही रहते हैं। कदाचित् उस समय व्योपारी इसके लिए तैयार न हुए हों। जो कुछ भी हो, उस पुस्तक में यही लिखा है, जिसे आपने देखा ही होगा और न देखा हो तो देख लें। लेकिन मैं अपनी मान्यता आपसे कह देता हूँ कि जैसे विज्ञान-युग दिन-दिन जोरों से बढ़ रहा है, वैसे ही मानव की शक्ति भी बढ़ती जा रही है। पुराने जमाने में मानव के पास एकमात्र आत्मज्ञान की ही शक्ति थी, लेकिन आज उसे विज्ञान की शक्ति भी प्राप्त हो रही है। फलतः मानव का व्यक्तित्व अत्यधिक समर्थ होने जा रहा है। वह इतना अधिक व्यापक होगा कि उसमें सारा समाज समा जायगा।

प्राइवेट सेक्टर और पब्लिक सेक्टर

बहुतों की यह धारणा है कि 'पब्लिक और प्राइवेट सेक्टर, दोनों मिलकर राष्ट्र बना है। ज्यों-ज्यों पब्लिक सेक्टर बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों प्राइवेट सेक्टर घटेगा और राष्ट्र की प्रगति होगी। भले ही यह काम धीरे-धीरे हो। आज तो भारत में दोनों सेक्टरों के लिए अवकाश है, लेकिन विकास-क्रम में एक दिन प्राइवेट सेक्टर खत्म हो जायगा और पब्लिक सेक्टर शत-प्रतिशत रहेगा।' इसे वे समाज-व्यवस्था की सर्वोत्तम अवस्था मानते हैं। लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता। सर्वोदय-विचार की दृष्टि से यह बात ठीक नहीं जँचती। मेरी तो इस विषय में यही धारणा रही है कि प्राइवेट और पब्लिक सेक्टरों के बीच हाथ और उँगलियों का-सा संबंध होना चाहिए। प्राइवेट सेक्टर उँगली तो पब्लिक सेक्टर हाथ है। उँगलियों को छोड़ हाथ काम नहीं करता और न हाथ को छोड़ उँगलियाँ ही काम करती हैं। हाथ जो करता है, वही उँगलियाँ भी करती

हैं और उँगलियाँ जो करती हैं, वही हाथ करता है। इसलिए मैं ऐसा गणित नहीं करता कि पब्लिक और प्राइवेट सेक्टर दोनों मिलकर राष्ट्र की योजना होगी। मैं मानता हूँ कि दोनों ही सेक्टर शत प्रतिशत हों। यह सर्वोदय का नया गणित है, जिसमें १००+१००=१०० हुआ करता है। किन्तु यह तभी हो सकेगा, जब कि व्यापारी लोकहित के प्रतिनिधि के तौर पर ही काम करें।

स्वार्थ साधने की सच्ची रीति

आप देखेंगे कि हिन्दुस्तान में और कदाचित् दुनिया में भी व्यापारियों के बिना किसीका नहीं चलता। हिन्दुस्तान में तो चलता ही नहीं। किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट है कि व्यापारियों को गाली दिये बगैर नहीं चलता। बड़े आश्चर्य की बात है कि जिनकी सेवा की अत्यावश्यकता हुआ करती है, उन्हें भी समाज गाली दिये बगैर नहीं रहता। किन्तु इसमें व्यापारियों का दोष नहीं, यह तो समाज का ही दोष है और उसमें व्यापारी भी आ जाते हैं। आज पैसे का मूल्य अस्थिर हो गया है, उसका कोई स्वतन्त्र मूल्य नहीं रहा। पैसा स्वयं ही अविश्वसनीय बन गया है। ऐसी स्थिति में मानव की सारी भावनाएँ स्वभावतः कृत्रिम बन जाती हैं। लोग स्वार्थ का वास्तविक अर्थ ही नहीं समझ पाते। मेरे हाथ और पैर का अलग-अलग स्वार्थ नहीं। शरीर के किसी भी अंग को पीड़ा होने पर आँखें रोने लगती हैं। शरीर के अंगों में जब परस्पर एक-दूसरे से सहानुभूति होती है, तभी वह ठीक चल पाता है। एक-दूसरे का भला करने की तत्परता में ही हमारा भला है। जब ऐसा हो, तभी स्वार्थ की सच्ची व्याख्या ध्यान में आयेगी। स्वार्थ साधने की यही सच्ची और सरल रीति है।

व्यापारियों की स्वयंसिद्ध आवश्यकता

इसलिए मेरा तो व्यापारियों पर पूरा विश्वास है। मैं मानता हूँ कि आपको मुझ जैसे कितने ही मित्र मिले होंगे और मिलेंगे, फिर भी उन सभी मित्रों में मैं आपका आत्मीय मित्र हूँ और आप सबकी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहता हूँ। व्यापारियों की प्रतिष्ठा बढ़े और मजदूरों की भी बढ़े, यही मैं चाहता हूँ। इसी-लिए कहता हूँ कि आज जो काम चल रहा है, उसमें आप लोग अपना सहयोग दें। गांधीजी ने जो कुछ कहा है, उसे आप कार्यान्वित करें तो आपमें सरकार से भी अधिक शक्ति आ जायगी, क्योंकि सारा व्यवहार आपके द्वारा ही चलता है। एक बार मैंने विनोद में कहा भी था कि स्कूल-कालेजों या कोर्ट-कचहरियों की तरह सरकार को भी एकआध वर्ष की छुट्टी दे दी जाय तो कुछ भी बिगड़ नहीं सकता। समाज का सारा काम सुव्यवस्थित रूप से चलता रहेगा। सरकार के बारे में ऐसा कहा जा सकता है, लेकिन व्यापारियों के बारे में कभी नहीं कहा जा सकता। अतः सरकार की अपेक्षा व्यापारियों की आवश्यकता स्वयंसिद्ध है।

आज के युग की माँग

सोचने की बात है कि आज ये जो काम शुरू हुए हैं, इनका क्या महत्त्व है? पहला काम भूमिहीनों को भूमि देना ही ले लीजिये। सारे गाँवों को आत्म-निर्भर बनाना कितना बड़ा काम है, यह आप खुद ही समझ सकते हैं। इसके बिना गाँव चल ही नहीं सकते। फिर गाँव की फसल पर ही राष्ट्र और व्यापारियों का आधार रहता है। अतः हमारे इस काम का कितना महत्त्व है, यह आप भलीभाँति समझ सकते हैं। इसमें कुछ नहीं तो छह लाख लोगों ने ४०-४५ लाख एकड़ का दान दिया ही है। इससे लोगों को धर्म की एक प्रेरणा प्राप्त हुई है। इस आन्दोलन से पूर्व भूमि के लिए अत्यधिक आसक्ति थी। जमीन को लेकर कितने ही झगड़े, मारकाट आदि हुआ करती थी। लेकिन लोगों को प्रेम-पूर्वक समझाया गया तो वे भूमि को छोड़ने के लिए तैयार हो गये। अवश्य ही यह आश्चर्यजनक घटना है, पर है युग-पुरुष की माँग! आज का युग माँग करता है कि यदि आप हिल-मिलकर काम करें और एक परिवार की तरह बरताव करें तो विज्ञान-युग के साधनों का भलीभाँति उपयोग कर सकते हैं। ज्यों-ज्यों विज्ञान बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों सभी-को एक होकर, हिल-मिलकर काम करने की आवश्यकता महसूस होगी। युग की माँग होने के कारण ही आज लोगों में उदारता पायी जाती है। मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहाँ लोग यह बात समझ लेते हैं। मेरी बात मंजूर कर लेते और जमीन दे देते हैं।

शान्ति-सेना से देश का बोझ कम होगा

दूसरा काम शान्ति-सेना का है। जहाँ-जहाँ अशान्ति हो, वहाँ पहुँचकर अशान्ति के कारणों को मिटाकर हमें शान्ति-स्थापना करनी है। आज तो दंगों को रोकने के लिए पुलिस और गोलीबार का उपयोग किया जाता है। किन्तु यदि रक्षा के लिए पुलिस और सेना की आवश्यकता मानी जायगी तो दुनिया में कभी शान्ति नहीं हो सकती। इसलिए कम-से-कम आन्तरिक शांति की स्थापना का काम तो लोग ही उठा लें और शान्ति-सैनिक बनकर, जान भी खतरे में डालकर, जनता के रक्षार्थ तैयार रहें। इससे मालिकों के हृदय में हम प्रवेश पा सकेंगे और उनका हृदय-परिवर्तन होगा। इसलिए सारे भारत में शान्ति-सेना संघटित होनी चाहिए।

मैंने पूरे भारत से एक लाख शान्ति-सैनिकों की माँग की है। उनके लिए और उनके बाल-बच्चों के लिए भी कोई योजना करनी होगी। इसलिए प्रत्येक घर से सहानुभूति के रूप में मैंने सर्वोदय-पात्र का कार्यक्रम भी चलाया है। घर-घर में सर्वोदय-पात्र रखा जाय और उसमें रोज मुट्ठीभर अनाज डाला जाय। यह हरएक के करने की बात है। यदि आप लोग भी 'ट्रस्टीशिप' का सिद्धान्त मानकर अपनी सम्पत्ति का हिस्सा दें तो समाज में भलीभाँति शान्तिमय क्रांति हो सकती है। भारत में अहिंसक क्रान्ति का दर्शन हो सकता है। आज तो भारत की सेवा के लिए नियुक्त ५५ लाख नौकरों पर ३ करोड़ रुपये खर्च करने पड़ते हैं। करोड़ों रुपये योजनाओं पर खर्च होते हैं। यदि देश को इससे बचाना हो तो देश में आन्तरिक शक्ति पैदा करनी ही होगी। इसके लिए देश का बहुत कुछ काम जनता स्वयम् ही करे। गाँव की सारी जमीन गाँव की बनाकर ग्राम-स्वराज्य की स्थापना की जाय। गाँव का कारोबार गाँववाले ही सँभाल ले और सरकार को मुक्त कर दें। इस तरह शान्ति-सेना बनेगी तो सेना की जरूरत ही न रहेगी और सरकार का भार तथा खर्च भी कम होगा।

छठे हिस्से की माँग का औचित्य

मैं आप लोगों से छठे हिस्से की माँग जो कर रहा हूँ, वह कोई बहुत कठिन नहीं है। आज भी व्यापारियों में दान की प्रवृत्ति कम नहीं है, किन्तु दान से शक्ति पैदा होनी चाहिए, इसका इन्हें भान ही नहीं हुआ है। याने वे लोग पुराने ढंग से ही दान दिया करते हैं। जिस तरह बिजली से शक्ति पैदा होती है, उसी तरह दान से भी एक शक्ति पैदा होती है और उसका उपयोग आज के जमाने के अच्छे-से-अच्छे कामों में किया

जाना चाहिए। व्यापारी-वर्ग इसपर विचार करे। यदि व्यापारियों को यह बात जँचे और वे इसके अनुसार काम करें तो उनकी प्रतिष्ठा बढ़ सकती है और आज का उनके संबंध का अविश्वास का वातावरण भी मिट सकता है। आज आप लोगों पर कर का बोझ पड़ता है, लेकिन वह सारा अयोग्य ही है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह इसलिए होता है कि हम लोग सार्वजनिक जीवन की अपनी जिम्मेवारी महसूस कर आगे नहीं आते। इसलिए मैं हरएक से समाज के लिए छठे हिस्से की माँग किया करता हूँ।

'दया' व्यापारियों का लक्षण

फिर, यदि तीन भाई व्यापार करते हों तो उनमें से एक भाई भी मुझे मिलना चाहिए, जो सेवक बन सके। ऐसे कितने ही भाई मुझे मिले हैं, जिनके हृदय में भगवान ने सेवा की भावना पैदा कर दी है। ऐसे ही और भी लोग मुझे मिलने चाहिए। आपके यहाँ बहुत-से लोग तो बड़े ही दयालु हुआ करते हैं। दया व्यापारियों का लक्षण ही है। यही कारण है कि धर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है कि समाज रूपी परमेश्वर के मुख में विद्या है; हाथ में पराक्रम, पेट में दया और पैरों में सेवा है। मैं मानता हूँ कि भारत के व्यापारियों में दया का भाव विशेष है। इसलिए यहाँ व्यापारियों को जो स्थान दिया गया है, वह दुनिया में कहीं नहीं दिया गया है। इस देश में तो व्यापार एक धर्म माना गया है। कृषि, गो-रक्षा और व्यापार ये धर्म हैं और इन्हें निष्काम भाव से करनेवाला कोई भी व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी होता है। जो मोक्ष ब्राह्मणों को विद्याध्ययन से प्राप्त होता है, वही व्यापारी को व्यापार से भी मिल सकता है। यह बड़ी अद्भुत बात है।

भारतीय व्यापारी का आदर्श

हिन्दुस्तान की कल्पना में व्यापारी समाज का एक सर्वथा अपरिहार्य सेवक है, उसके बिना किसीका भी चल नहीं सकता। वह सेवक के रूप में संग्रह करेगा तो सबके लिए करेगा। याने व्यापारियों का स्थान मातृस्थान है। माँ के पास जो भी संग्रह रहता है, वह बच्चे के लिए ही है। बच्चा स्वयम् संग्रह नहीं कर पाता, इसलिए माँ संग्रह किया करती है। इसी तरह व्यापारी समाज के लिए संग्रह करें। यही हमारे देश का आध्यात्मिक मूल्य और स्वतन्त्र मूल्य है। साधारणतः व्यापारी जितने सौम्य प्रकृति और मांसाहार-मुक्त हुआ करते हैं, उतने अन्य लोग नहीं। यद्यपि गुजरात में किसान भी शाकाहारी हैं, फिर भी हिन्दुस्तान के अन्य प्रान्तों में व्यापारियों में ही यह वृत्ति पायी जाती है। यह उनकी विशेष वृत्ति है। इसका अर्थ यही है कि आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने की ओर उनका स्वाभाविक झुकाव है।

मेरा सर्वश्रेष्ठ विचार !

मैं जो कुछ कहता हूँ, उसका दबाव किसीपर डालना नहीं चाहता। मेरे पास अनेक श्रेष्ठ विचार हैं, लेकिन उनमें सबसे श्रेष्ठ विचार यही है कि मेरे विचार का किसीपर आक्रमण न हो। याने विचार बिना पसंद हुए यदि कोई मान लेता है तो मुझे दुःख ही होगा। लेकिन विचार पसन्द पड़ने के बावजूद यदि कोई उसे अमल में नहीं लाता तो मैं आशा रखूँगा कि आज नहीं तो कल अवश्य लायेगा। इसलिए आप लोग यह समझ लें कि यदि आप दें तो 'आपने दिया' कहूँगा और न दें तो 'देंगे' ऐसा ही मानूँगा। लेकिन यह कहना मेरा स्वभाव ही नहीं कि 'आपने नहीं दिया'। ● ● ●

"विनोबा-प्रवचन"-प्रकाशन वक्तव्य

[न्यूजपेपर-रजिस्ट्रेशन ऐक्ट (फार्म नं० ४, नियम ८) के अनुसार हरएक अखबार के प्रकाशक को निम्न जानकारी पेश करने के साथ-साथ अपने अखबार में भी वह प्रकाशित करनी होती है। तदनुसार यह प्रतिलिपि यहाँ दी है।—सं०]

(१)	प्रकाशन का स्थान	वाराणसी
(२)	प्रकाशन का समय	सप्ताह में तीन बार
(३)	मुद्रक का नाम	श्रीकृष्णदत्त भट्ट
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी
(४)	प्रकाशक का नाम	श्रीकृष्णदत्त भट्ट
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	गोलघर, वाराणसी
(५)	संपादक का नाम	श्रीकृष्णदत्त भट्ट
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	गोलघर, वाराणसी
(६)	समाचार पत्र के संचालकों का नाम, पता	अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ गोलघर, वाराणसी (सोसायटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट १८६० के ऐक्शन २१ के अनुसार रजिस्टर्ड सार्वजनिक संस्था)

मैं श्रीकृष्णदत्त भट्ट, यह स्वीकार करता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार उपर्युक्त विवरण सही है।

गोलघर, वाराणसी। —श्रीकृष्णदत्त भट्ट, प्रकाशक

● ● ●

अनुक्रम

१. 'सेवक-वर्ग' नहीं, 'सेवक-समूह'...
ढिकोला १५ फरवरी '५९ पृ० २०१
२. प्रेमी, अनाक्रामक और त्यागी ही...
भीलवाड़ा १२ फरवरी '५९ ,, २०३
३. व्यापारी समाज के लिए ही...
सरवज १९ दिसम्बर ५८ ,, २०६

● ● ●

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित
फोन : १२८५ तार—प्रकाशन, राजघाट, काशी।